पण्डित लखमीचन्द का जीवन-वृत्त

वेद-मंत्रों से गुंजित, यज्ञधूमों से धूसरित, सरस्वती से सिक्त, महाभारत की साक्षी, गीता की गायिका, संतों की सेविका, बाणभट्ट, हर्षवर्धन और सूरदास सरीखे शारदा–पुत्रों की धात्री, लोक-संगीत की संरक्षिका, लोक–नृत्य एवं लोकनाट्य की रंग-स्थली यही हरियाणा की पावन धरती है, जिसे सदैव अपनी अजस्र सांस्कृतिक थाती पर गर्व भी रहा है और गौरव भी। नर-गंधर्व पण्डित लखमीचन्द इसी वीर–प्रसू धर्मधरा की गोदी में चहके–महके, नाचे-गाए और अंततः इसी की पवित्र माटी में विलीन हो गए।

उनका जन्म सन् 1901 में गांव जांटी कलां, जिला सोनीपत के एक मध्यम वर्गीय गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ।[1] उनके पिता पण्डित उमदीराम एक साधारण से किसान थे, जो अपनी थोड़ी सी भूमि पर कृषि करके समस्त परिवार का भरण-पोषण करते थे। जब पण्डित लखमीचन्द कुछ बड़े हुए तो उन्हें स्कूल में न

---

1. लखमीचन्द बसैं थे जांटी जमना के कंठारै।
नरेले तै तीन कोस सड़के आजम के सहारै।
इसा गवैया कोए भी हुआ ना सारा देश पुकारै।
मेरी–तेरी सीख रागनी दुनिया रुक्के मारै।

(पण्डित मांगेराम : सांग नौरत्न)

श्री देवी शंकर प्रभाकर एवं पं० देवीराम के मतानुसार पं० लखमीचन्द का जन्म संवत् 1960 तदनुसार सन् 1903 में हुआ था।
(हरियाणवी लोकनाट्य, सप्तसिन्धु-अक्तू०-नव० 1968, पृष्ठ 57।)

Scanned by CamScanner

भेजकर गोचारण का कार्य सौंपा गया। गीत-संगीत की ललक उन्हें बचपन से ही थी।[1] अतः ग्वालों के साथ घूमते-घूमते उनके मुख से सुने हुए टूटे-फूटे गीतों की पंक्तियों को गुनगुना कर समय यापन करने लगे।

दस वर्ष की आयु तक पहुंचते–पहुंचते उन्हें कर्ण–रस या गीत–श्रवण का ऐसा चस्का लगा कि गांव की तो बात ही क्या, वे दूर-दूर जाकर भी सांगी और भजनियों के कल-कण्ठ का आनंद लेने से नहीं चूके। उम्र बढ़ने के साथ–साथ सांग के प्रति उनकी आसक्ति इस कदर बढ़ गई कि सांग देखने के लिए कई-कई दिन बिना बताए ही घर से गायब रहने लगे। एक बार उस समय के प्रसिद्ध सांगी पं० दीपचंद का सांग देखने के लिए वे घर से ऐसे गये कि घर वालों को चिंता हो गई। कई दिन की दौड़-धूप के बाद परिजन उन्हें बड़ी मुश्किल से ढूंढ कर घर लाए। ऐसे ही एक बार शेरी खाण्डा के निवासी निहाल सांगी के सांग पर ऐसे लट्टू हुए कि उसका आनंद लेकर सात दिन बाद घर लौटे।

इन्हीं दिनों पण्डित लखमीचन्द के जीवन में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ। सौभाग्य से बसौदी निवासी प्रज्ञाचक्षु, लोक कवि मानसिंह उनके गांव में एक विवाहोत्सव पर भजन गाने के लिए आमंत्रित किये गये। उनकी कंठ–माधुरी ने किशोरायु लखमीचन्द का कुछ ऐसा मन मोह लिया कि प्रथम भेंट में ही उन्होंने श्री मानसिंह को अपना गुरु मान लिया। अपनी गीत-संगीत की पिपासा को तृप्त करने के लिए वे अपने गुरु के साथ ही चले गये। उन्होंने छः महीने तक पूरी निष्ठा एवं श्रद्धा से गुरु की सेवा की तथा इस सतत साधना के पश्चात गायन-कला में प्रवीण होकर घर लौटे।

गुरु-शिष्य के प्रगाढ़ प्रेम की इस भावनात्मक भेंट को हरियाणा के उद्भट विद्वान श्री कृष्णचंद्र शर्मा ने इस प्रकार रेखांकित किया है, "वैसे तो मानसिंह अपने जमाने के साधारण कवि थे, परन्तु शिष्य का लगाव और श्रद्धा इतनी गहरी थी कि गुरु–प्रभाव उतना ही फलदायक हुआ, जितना सीधे-सादे सुकरात का प्रभाव अपने शिष्य प्लेटो पर। लखमीचन्द का सारा जीवन गुरुमय रहा।[2]"

गुरु मानसिंह के संसर्ग से पण्डित लखमीचन्द संगीत, गायन और वादन-कल में तो निष्णात हो गये, किन्तु अभिनय कला में पारंगत होने की लालसा उनके म में निरंतर उमड़ती ही रही। यद्यपि समाज में उन दिनों सांग-सम्बन्धी क्रिया-कला' को निकृष्ट एवं हेय समझा जाता था, फिर भी पं० लखमीचन्द ने सामाजिक अर्गल'

---

1. पढ़े लिखे और भाव बिना मनै छन्द के बेरा ना सै।
   पर गावण और बजावण का मनै बालकपण तै चा सै।
   इब तेरे केसे लखमीचन्द हजार बणे हाण्डै सैं।।

   (काव्य विविधा, रागनी

2. कृष्णचन्द्र शर्मा, हरियाणा के कविसूर्य लखमीचन्द (1983) पृ० 22-23

Scanned by CamScanner

की परवाह न करते हुए, अपने जीवन की चिर-साध को सिरे चढ़ाने के लिए कमर कस ली। अभिनय कला सीखने के लिए वे कुछ दिन मेंहदीपुर निवासी श्रीचन्द सांगी की सांग-मण्डली में रहे। तत्पश्चात् वे अपनी मंजिल को पाने के लिए प्रसिद्ध सांगी सोहन कुण्डलवाला के बेड़े में शामिल हो गए। अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए उन्होंने रसोइया तक बनने में भी संकोच नहीं किया। यहीं इनकी मुलाकात सुप्रसिद्ध सारंगी-वादक धूला खां से हुई, जो धीरे- धीरे मित्रता में बदल गई।

पण्डित लखमीचन्द की इस उत्कटेच्छा को श्री कृष्णचंद्र ने इस प्रकार उद्घाटित किया है, ''संगीत-प्रेम और आत्माभिव्यक्ति का जोश इस सीमा तक लखमीचन्द में भरा हुआ था कि रात को जब सभी लोग खाना खाकर सो जाते, तब धूला खां के पास जाकर वे सारंगी पर संगीत सुनने की इच्छा प्रकट करते। धूला खां सारंगी बजाते और लखमीचन्द घुंघरू बांधकर नाचते। लखमीचन्द ने छः महीने में इतना अच्छा गाना और नाचना सीख लिया, जो अन्य कलाकार जीवन भर प्रयत्न करके भी नहीं सीख पाये।[1]

अपने कला-कौशल के कारण सोहन कुण्डलवाला के सांग में उन्हें मंच पर अभिनय-प्रदर्शन का मौका भी मिलने लगा। किन्तु भेंट गाते समय वे सदैव अपने गुरु मानसिंह को ही स्मरण करते थे। एक बार सांग-मण्डली बरेली में जाट रेजिमेंट को सांग दिखाने के लिए गई हुई थी। वहां बातचीत के दौरान सोहन कुंडलवाला ने लखमीचन्द से कहा, ''वह अंधा मुझ से ज्यादा क्या जानता है ? तुम मुझे अपना गुरु क्यों नहीं मानते ?'' इस पर पं० लखमीचन्द ने उत्तर दिया, ''गुरु एक, विद्या अनेक। गुरु तो मेरे मानसिंह ही हैं और वे ही रहेंगे।''

इस असह्य गुरु-तिरस्कार को न पचा सकने के कारण लखमीचन्द विक्षुब्ध मन से रेलगाड़ी में बैठकर घर लौटने के लिए रेलवे स्टेशन पर आ गए। इस बात का पता लगते ही जाट रेजिमेंट के सूबेदार शंकर सिंह, जो मूलतः महम (ज़िला रोहतक) के निवासी थे, उन्हें लौटाने के लिए तुरंत स्टेशन पर उनके पास जा पहुंचे। अपने मित्र के बार–बार अनुरोध करने पर वे इस शर्त पर सांग–प्रदर्शन में पुनः शामिल होने के लिए सहमत हुए कि अब के बाद सोहन कुंडलवाला से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा और वह उसका हिसाब कर देगा। लखमीचन्द के लौट आने पर अपना अन्दाजेबयां बदलकर सोहन ने कहा कि मैं तो तुम्हारी गुरुभक्ति की परीक्षा ले रहा था, तुम तो वैसे ही नाराज हो गये। खैर, उस दिन के बाद लखमीचन्द ने सोहन की रागनियों को भी तिलांजलि दे दी।

बरेली में अंतिम सांग समाप्त होने पर सोहन के कुछ शिष्यों ने मिलकर लखमीचन्द को पारा (विष) दे दिया। ईश्वर की कृपा एवं गुरु के आशीर्वाद से उनके

1. कृष्णचंन्द्र शर्मा, कविसूर्य लखमीचन्द (1983) पृ० 25

Scanned by CamScanner

प्राण तो बचे गये, किन्तु आवाज बिगड़ गई। अब वे अपने गांव लौट आए तथा अपनी दिनचर्या बना ली कि रस्सी से लटके खटौले पर बैठकर दुलाए कुएं (गांव के पुराने कुएं का नाम) में उतर जाते और वहीं रियाज करते। नित्यप्रति इस प्रकार अपने स्वर को साधने में उन्हें ग्यारह महीने लग गए।

निर्दिष्ट स्वर-साधना के साथ-साथ उनकी काव्य-प्रतिभा के अंकुर भी प्रस्फुटित होने लगे। संयोगवश इस दौरान एक दिन सोहन कुंडलवाला उनके गांव जांटी कलां में अपने सांग का प्रदर्शन करने के लिए आ गया। 'सरणदे' नामक सांग को अभिनीत किया जा रहा था कि लखमीचन्द को पुराना हिसाब चुकाकर अपना आत्मसम्मान उजागर करने का अच्छा अवसर मिल गया। वे उत्साह-पूर्वक सांग के मंच पर जा चढ़े और सोहन से कहा, "यदि आज अंधे के शिष्य से गाने में बाजी मार लो, तो मैं तुम्हें अपना गुरु मान लूंगा। या तो तुम टेक रखो मैं कली बनाऊंगा या मैं टेक रखूंगा तुम कली बनाओ।" सांग में सोहन ने नायक राजा भोज की भूमिका निभाई और लखमीचन्द ने नायिका सरणदे का अभिनय किया। जब लखमीचन्द उत्तरोत्तर अच्छा गाते रहे, तो अपनी पराजय को अवश्यंभावी जानकर सोहन ने लखमीचन्द पर आक्षेप किया कि वह अपने गांव में अतिथि का अपमान कर रहा है। इस पर लखमीचन्द ने उत्तर दिया कि यह सब अपने गुरु की प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास है।

इसी समय पं० लखमीचन्द ने प्रतिज्ञा की कि आज के बाद वह किसी और सांगी के सांग में जनाना भूमिका नहीं निभाएंगे। इस घटना के बाद बीस वर्ष के युवक लखमीचन्द ने अपने गुरु-भाई जयलाल उर्फ़ जैली के साथ मिलकर अपनी अलग सांग मण्डली बनायी और गांव-गांव में घूम-घूम कर सांग प्रदर्शित करने लगे।

इनके प्रारम्भिक सांगों में प्रेम एवं श्रृंगार-चित्रण का आधिक्य रहता था। अतः युवा वर्ग ने तो इन्हें खूब चाहा और सराहा, किन्तु प्रौढ़ एवं वयोवृद्ध लोग इनके सांगों से परहेज करते रहे। कुछ लोग तो इनका अभिनय देखे बिना तथा इनकी कविता सुने बिना ही इनके कटु आलोचक बन गए। उनकी तो यह दृढ़ धारणा बन गई कि लखमीचन्द के सांगों में ऊलजलूल अश्लीलता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इस संदर्भ में श्री कृष्णचंद्र शर्मा का कहना है कि हरियाणा के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी पं० श्रीराम शर्मा ने गौड़ स्कूल में सांग करते हुए लखमीचन्द को इसी कारण नहीं सुना, क्योंकि रोहतक के रूढ़िवादी लोग लखमीचन्द के विरुद्ध किये गये अश्लीलता सम्बन्धी मिथ्या प्रचार के कारण उन्हें सम्मान का पात्र नहीं समझते थे। परन्तु बीस वर्ष के युवा कवि से, जिसने धर्म-शास्त्रों का अध्ययन न किया हो और जिसका प्रेरणा-स्रोत केवल अपनी भावनाएं और ग्रामीण जीवन का सम्पर्क रहा हो, परिमार्जित कविता की आशा रखना न्यायसंगत नहीं है।[1]

---

1. कृष्ण चन्द्र शर्मा, हरियाणा के कविसूर्य लखमीचन्द, पृष्ठ 29।

Scanned by CamScanner

नाच-गान एवं सांग-प्रदर्शन के कटु आलोचकों को मुंह तोड़ जवाब देते हुए उन्होंने शास्त्र-सम्मत प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिखाया कि नाचना-गाना बुरा नहीं है। स्त्री का वेश धारण करने में भी कोई बुराई नहीं, क्योंकि हमारे धर्म-ग्रंथों में नृत्य-गायन की महिमा का प्रतिपादन बड़े आदर के साथ किया गया है। सांग 'नौटंकी' की एक रागनी में इन तथ्यों का उद्‌घाटन इस प्रकार किया गया है–

इन मर्दा मैं क्या दोष है धारण मैं भेष जनाना ।।टेक।।
प्रथम तो शरीर तेरा त्रिया ही से त्यार हुआ।
त्रिया ही के रजवीर्य से मिलकै नै एकसार हुआ।
नौ महीने गर्भ मैं राख्या साक्षी से बाहर हुआ।
फेर दस साल तक जनाने कपड़यां मैं तेरा बास हुआ।
मर्दाना कपड़ा ना देख्या तेरा पर्दा फास हुआ।
कुछ दिन पाछे शादी हो कै त्रिया ही का दास हुआ।
मन तन अपणे का नहीं होश है, मूर्ख क्यों हुआ दीवाना।। 1।।[1]

निस्संदेह लखमीचन्द को सांग–कलां के क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली, किन्तु सफलता के गर्भ में एक कसक थी, जो निरंतर इनके हृदय को कचोटती रहती। वह यह कि वे अपनी कला से वृद्ध एवं प्रतिष्ठित लोगों का सम्मान नहीं पा सके, जब कि उन्हीं दिनों श्री बाजे नाई को लोग 'बाजे भगत' के नाम से स्मरण करते थे। पं० लखमीचन्द इस अंतर के रहस्य को भली भांति समझते थे। अतः उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि वे भी अपने सांगों के प्रतिपाद्य में परिवर्तन करके तथाकथित सभ्य समाज की वाहवाही लूटेंगे।

अब वे अपने अभीष्ट मन्तव्य की पूर्ति के लिए संत–महात्माओं एवं सुधी विद्वानों से संलाप में बेहद रुचि लेने लगे। इन्हीं दिनों उनकी भेंट संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान टिटोली (रोहतक) निवासी पण्डित टीका राम से हुई। उनकी बातचीत एवं विद्वता से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हें आजीवन अपने साथ रहने के लिए मना लिया। अब वे पण्डित जी से जी भरकर वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण, गीता, महाभारत और रामायण के प्रसंग सुनते तथा उन्हें अपने छंदों में बांधकर सांग–मंच पर प्रस्तुत कर देते।

इस प्रकार उनके उत्तरवर्ती सांगों से अध्यात्मवाद का पुट दिनोंदिन गहरा होता गया तथा श्रृंगारिकता संयत होती गई। जिसके परिणामस्वरूप विद्वत्समाज में उनके सांगों की खूब चर्चा होने लगी। यहां तक कि बातचीत के विभिन्न प्रसंगों में पण्डित लखमीचन्द की सूक्तियों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। आज भी लोग अपनी बात की पुष्टि के लिए प्रायः कहते सुने जाते हैं, "भाई, कहणा दादा लखमी का...।"

1. पूरे विवरण के लिए सांग नौटंकी की रागनी संख्या 51 देखिए।

Scanned by CamScanner

सांग का स्वरूप और परम्परा

किसी भी प्रदेश के लोकनाट्य वहां की संस्कृति के मुंह बोलते चित्र कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनमें उस भू–भाग के मौलिक आदर्श एवं जीवन–मूल्यों को अभिनय तूलिका द्वारा इंद्र–धनुषी रंगों में चित्रित किया जाता है।

डॉ. नागेन्द्र ने लोकनाट्य की गरिमा को रेखांकित करते हुए लिखा है कि लोकनाट्य–साहित्य इतना विशाल और महत्वपूर्ण है कि इसमें भारतीय संस्कृति का सहज रूप देखा जा सकता है। इसमें सहस्त्र वर्षो तक सहिष्णु बने रहने वाले कृषकों के जीवन–दर्शन का पता लगाया जा सकता है। लोकनाट्यों में वे तत्व निहित हैं, जो समय–समय पर देशकाल के अनुरूप जीवन्त साहित्य प्रस्तुत करके लोकजीवन को रस–सम्पृक्त करते रहे। यदि सहानुभूति के साथ इस विशाल साहित्य का अनुशीलन किया जाए तो इस रंगमंच के झीने आवरण से लोकजीवन का शताब्दियों का इतिहास झांकता दिखाई पड़ेगा। देश के विशाल जनसमूह की आशा–आकांक्षा, विजय–पराजय, आचार–व्यवहार, साहस–संघर्ष आदि की जीवित कहानी मुखरित हो उठेगी।[2]

लोकनाट्य 'सांग' हरियाणा की नाट्य–पराम्परा का सिरमौर है, जिसे यहां की कौमी नाटक भी कहा जा सकता है। हरियाणा की जनरंजनकारी यह विधा वस्तुतः गीत–संगीत एवं नृत्य की मनमोहक त्रिवेणी है, जिसमें सर्वाधिक मजेदार है–इसके गीतों की गमक। गीत हरियाणवी सांगों के प्राण होते हैं। सांगों का ताना–बाना सतरंगे गीतों के कला–तंतुओं से ही बुना जाता है। सांग में यह रागनी का जादू ही है, जो सिर चढ़कर बोलता है। एक हाथ कान पर रखकर और दूसरे को आकाश में उठाकर अभिनेता जब एक विशेष अंदाज में अपनी रागनी गाता है, तो समां बंध जाता है। इन सांगो में लोकप्रिय कथानकों के आधार पर गीतों के माध्यम से अभिनय द्वारा रस की ऐसी वर्षा की जाती है कि मुक्त–मंच के चारों ओर बैठे दर्शक रागनियों की स्वर–लहरियों में मंत्र– मुग्ध से हो जाते हैं। सावन की तरह बरसते संगीत की फुहारों में उनके मन–मोर नाच उठते हैं।

---

1. हरियाणा संवाद (लोककवि लखमीचन्द), 14 अप्रैल 1984, पृ० 17.

सांगों में नृत्य अभिनय का प्रमुख माध्यम होता है। नृत्य के हाव–भाव से सांग के प्रदर्शन में निखार आता है। बिना बोले, कुछ निश्चित एवं परम्परित संकेतों से ही बात दर्शकों को समझा दी जाती है। नृत्य की मुद्राएं सांग के अभिनय को अधिकाधिक आकर्षक एवं संवेद्य बनाती है। नृत्य का ठुमका लगते ही सांग के दर्शकों में एक हलचल सी मच जाती है। उनके हृदय आंनदातिरेक से उद्वेलित हो उठते हैं। खुले मंच पर स्त्रीवेश में नाचने वाला पात्र, जिधर भी जाता है, उधर ही एक चुहलपूर्ण वातावरण की सृष्टि हो जाती है।

Scanned by CamScanner

हरियाणा के सांगों में नौटंकी की भांति प्रायः नई उम्र के चंचल लड़के ही स्त्रीवेश में नारी पात्रों की भूमिका निभाते हैं। पर कभी–कभी ओढ़नी के झीने घूंघट में से चमचमाते चंचल एवं कजरारे नयनों की जगह कंटीली मूछों का दृश्य दिखाई दे जाता है। इससे सांग के प्रभाव में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। स्त्रियों का सा लालित्य न होने पर भी ये नर्तक–अभिनेता दर्शकों की रग दबाने में पूर्णतः सक्षम होते हैं।

सांगों में हास्य रस की चुटीली चास भी रहती है और उसका आलम्बन होता है सांग का विदूषक, जिसे 'नकली'[1] कहा जाता है। लोकरंजन का सर्वाधिक दायित्व इसी पात्र पर होता है। वह कभी राजा का मंत्री होता है, कभी रंगीले साहूकार का सहचर। नायक की विशेषताओं को प्रकट करने की अपेक्षा उसके द्वारा खलनायक और अन्य पात्रों की विकृतियां अच्छे ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं। उसका कलाकौशल उसके वेश विन्यास एवं उसकी तेज जबान में होता है, जिसमें हास्य–विनोद एवं सामयिक वाग्विदग्धता भरी होती है। दर्शकों की नाड़ी पहचान कर ऐन मौके पर वह ऐसे परिहास करता है कि हंसते–हंसते दर्शकों के पेट में बल पड़ जाते हैं। वह केवल अभिनेताओं से ही छेड़छाड़ नहीं करता वरन् दर्शकों को ही परिहास का विषय बना लेता है। जब कोई दर्शक दुष्टतापूर्ण कोई बात कर देता है तो उससे निपटना भी उसे खूब आता है। गम्भीर से गम्भीर प्रसंग को हास्यमय बनाने को सामर्थ्य उसमें होता है।

1. नकली मंचन में दिखाई पड़ता है, लिपिबद्ध सांगों में यह नहीं पाया जाता है।

Scanned by CamScanner

जबकि लखमीचन्द के साथ अपनी किशोर अवस्था को पार करके यौवन की ओर अग्रसर थे।

पण्डित लखमीचन्द आशु कवि थे। उन्होंने अपनी किसी रागनी को पुनः उसी रूप में नहीं गाया, जब-जब गाया-नए रूप में गाया।

सांग परम्परा की देन

पण्डित लखमीचन्द सांग-कला के अखाड़े में क्या उतरे कि एक नई बात हो गई। उन्होंने अपनी अभिनव अभिनेयता के साथ कविता-कामिनी को ऐसे चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुत किया कि सांग-मंच के दर्शक 'वाह! वाह!' कर उठे। यत्र-तत्र-सर्वत्र उन्हीं के चर्चे होने लगे। उन्होंने सांग-कला में शृंगार को संजोकर ऐसा अद्‌भुत आसव उँडेला कि लोग उसका रसास्वादन करने के लिए मधुमक्खियों की तरह बीस-बीस कोस से खिंचे चले आते।

डॉ. शंकरलाल यादव के शोध-प्रबन्ध में इस कथ्य की पुष्टि इस प्रकार होती है, "पं. लखमीचन्द जी ने इस क्षेत्र में एक दिशा दी। उन्होंने सांग को जो अभी पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों पर आधारित थी, एक उन्मुक्त क्षेत्र में ला खड़ा किया। जीवन के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया। प्रेम और यौवन जो ग्रामीण जीवन की दो विभूतियां हैं, उनका अच्छा संयोग सांग में देखने को मिला है।[1]

डॉ. शशिभूषण सिंहल ने सांगों के परम्परित ढर्रे में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए उनके साहसिक कदम की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि–पण्डित लखमीचन्द ने सांगों को परम्परित रूढ़ियों से मुक्त करके उनमें प्रेम और यौवन का ऐसा ताना बुना कि देखने वाले दंग रह जाते थे।[2]

सांग-कला के क्षेत्र में पं. लखमीचन्द की क्रांतिकारिता का मूल्यांकन करते हुए श्री देवीशंकर प्रभाकर ने लिखा है, 'कभी-कभी कला के इतिहास में कुछ एक ऐसे चमत्कारिक व्यक्तित्व उभरते हैं, जो स्वयं ही इतिहास बन जाते हैं। हरियाणवी लोकनाट्य के इतिहास में भी एक ऐसी घटना घटी जबकि सोनीपत जिले का एक अनपढ़ ग्वाला प्रकाश-बिम्ब बनकर आया और हरियाणवी लोकनाट्य के सम्पूर्ण शिल्प-विधान को अपने प्रवाह में बहा ले गया। वह था हरियाणा का सर्वश्रेष्ठ लोक-नाट्यकार पं. लखमीचन्द।[3]"

---

1. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 397
1. Pandit Lakhmi Chand freed the themes of the 'Saang' from religious and puranic subjects to which they had become confined and included in them a blend of love themes and of youth. Thus the 'Saang' was made to a more ornate and realistic medium.

Dr. Shashi Bhushan Singhal, Haryana, Page 40.

3. सप्त–सिन्धु (हरियाणवी लोकनाट्य), अक्तूबर–नवम्बर (1968) पृ० 56-57.

Scanned by CamScanner

वे अपने सांग-प्रदर्शन को सहज, स्वाभाविक एवं सम्प्रेष्य बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास करते थे। एक बार वे गांव सांघी (रोहतक) में 'राजा नल' का सांग कर रहे थे। प्रसंग के अनुसार आकाश से रागनी की गूंज सुनाई पड़ी–

गगन मैं चढ़ कै कलजुग बोल्या एक वचन सुण मेरा।
पाशे बणकै राज जीत लिया नल जूए मैं तेरा।।

सभी श्रोता आश्चर्यान्वित होकर आकाश की ओर देखने लगे। बाद में पता चला कि पण्डित जी ने प्रसंग आने से कुछ समय पूर्व एक गायक कलाकार को चौपाल में खड़े, नीम के वृक्ष पर चढ़ा दिया था।

लखमीचन्द की कविता-माधुरी की लोकप्रियता का उल्लेख करते हुए श्री लक्ष्मीनारायण वत्स ने लिखा है कि इस प्रकार की संरचना होने से उनकी रेडियो, टेपरिकार्डर, लाऊड स्पीकर पर चाहे किसी भी कलाकार द्वारा गाई जा रही हो, उस रागनी या भजन को चलते लोग रूककर सुनते हैं। धीरे-धीरे वहां भीड़ तक बन जाती है। उनकी कविताओं की अनेकानेक लोगों के मन पर अमिट छाप है, अनगिनत लोग उनके प्रशंसक हैं, जिनमें अच्छी खासी संख्या उन लोगों की भी है, जो सुशिक्षित हैं और जिन्होंने बाद में पैदा होने के कारण पण्डित लखमीचन्द को देखा तक नहीं।[1]

उनके काव्य का पर्यावलोकन करने पर सहज ही यह धारणा बनती है कि उनके काव्य में जयदेव के समान सरस पदावली, वैष्णवजन की सी भक्ति-भावना, बिहारी का-सा श्रृंगार-चित्रण, जयशंकर प्रसाद का-सा बहुआयामी कथा फलक और सुमित्रानन्दन पंत का-सा सटीक शब्द-चयन विद्यमान है। वे हरियाणा लोकजीवन के शुकदेव, कालिदास, गेटे और शेक्सपियर थे। सांग–कला के क्षेत्र में तो उन पर यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है–'न भूतो न भविष्यति'।

लखमीचन्द के सांगों का वर्गीकरण

पण्डित लखमीचन्द के सांगों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करना अति दुष्कर कार्य है, क्योंकि उनका कोई भी सांग ऐसा नहीं है, जिसमें श्रृंगारिक एवं धार्मिक भावनाएं परस्पर आंख मिचौनी न खेलती हों। कहीं श्रृंगार पर अध्यात्मवाद का पहरा है, तो कहीं अध्यात्मवाद की क्रोड में श्रृंगार की कलियां किलक रही हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिपाद्य की मूल प्रवृत्तियों के आधार पर ही उनके सांगों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया जा सकता है। वीर रस और हास्य रस के छिटपुट प्रसंग ही उनके सांगों में आ पाए हैं। अतः प्रवृत्तियों की प्रमुखता के अनुसार उनके सांगों को इस प्रकार दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) श्रृंगार एवं प्रेम-प्रधान	(ख) धर्म एवं नीति-प्रधान
नौटंकी	सत्यवान सावित्री

Scanned by CamScanner

धर्मकौर–रघुबीर सिंह
चंद्रकिरण
हीर–रांझा
राजा भोज : सरण दे
ज्यानी चोर
चाप सिंह
हूर मेनका
शाही लकड़हारा
भगत पूरणमल
राजा हरिश्चंद्र
सेठ ताराचंद
चीर-पर्व
विराट-पर्व
नल-दमयन्ती
पद्मावत
भूप पुरंजन
मीराबाई

Scanned by CamScanner